# ज्ञान की भारतीय परम्परा और साहित्य

डॉ. मनोज पाण्डेय, सह अध्येता
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

विषय बिन्दु -

- प्रस्तावना
- भारतीय ज्ञान मीमांसा
- भारतीय ज्ञान परंपरा के वांग्मयीन अधिष्ठान
- ज्ञान की भारतीय परम्परा की आवश्यकता
- निष्कर्ष

प्रस्तावना

जगत् में ज्ञान विषयक दो दृष्टि विद्यमान रही है - एक- आत्मवादी दृष्टि और दूसरी- वस्तुवादी दृष्टि। भारतीय दृष्टि आत्मवादी है। आत्मवादी दृष्टि में 'आत्म' की तलाश ही जीवन का मुख्य उद्देश्य माना गया है। इस दृष्टिकोण से इस सचराचर जगत् में 'आत्म' को सुखकर और श्रेयस्कर बनाना ही ज्ञान का हेतु है। भारतीय परंपरा में ज्ञान को अज्ञान से मुक्ति का साधन कहा गया है - 'सा विद्या या विमुक्तये' । 'आत्म' अर्थात 'स्व' अर्थात 'मैं' - 'Who am I' की जिज्ञासा ही ज्ञान का मुख्य कारण है। समस्त ज्ञान- विज्ञान की उत्पत्ति और विकास के मूल में यह जिज्ञासा भाव ही विद्यमान है। श्रीमद्भागवतगीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है -' न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'।[1] अर्थात ज्ञान के समान पवित्र वस्तु कोई दूसरी नहीं है। यहां ज्ञान को आत्मा का सर्वोत्तम शोधक और मुक्तिदाता कहा गया है। 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि कहते हैं - 'ज्ञान हमारे अंदर के मन

की प्रक्रिया है'। अर्थात यह इंद्रियगम्य नहीं है। इंद्रिय, मन और बुद्धि के समन्वय का प्रतिफल है 'ज्ञान'। ज्ञान का केंद्र मन है। यह ध्यान, साधना, चिंतन, मनन से प्राप्त होता है। अर्थात मन की चंचलता को एकाग्रता में अधिष्ठित करने पर 'ज्ञान' की प्राप्ति होती है। अपने यहां कहा गया है कि 'मन की आंख से देखो'। इसीलिए भारतीय परंपरा में 'ज्ञान' को महज अक्षर बोध नहीं, बल्कि व्यक्तित्व की, चरित्र की शुभ्रता और उदात्तता की कसौटी माना गया है।

ज्ञान की भारतीय परंपरा के बारे में श्री अरविंद का कथन है - 'we Indians born and bred in a country where Gyan has been stored and accumulated since the race began, bear about in us the inherited gains of many thousands of years.'[2]

भारतीय परंपरा में 'ज्ञान' मौखिक और लिखित दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रारंभिक दौर में जब लेखन कला से मनुष्य परिचित नहीं था, निसंदेह मौखिक परंपरा ही विद्यमान थी। ऋषियों, तपस्वियों ने अपने अर्जित अनुभव कोष से अपने शिष्यों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी उसे प्रसरित किया। गुरुकुलों और लोक चेतना के माध्यम से भारतीय ज्ञान यात्रा बहुत लंबे समय से गंगा की अबाधित, अनाहत धारा के समान प्रवहमान बनी हुई है। वैदिक काल से ही प्रवहमान ज्ञान की इस मौखिक परंपरा से आश्चर्यचकित होकर ही १९ वीं शताब्दी का मैक्समूलर लिखता है "यह आश्चर्यजनक लग सकता है, किन्तु उससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह लगेगा कि यह एक ऐसा तथ्य है जिसे संदेह करने वाले किसी भी व्यक्ति के द्वारा इसी क्षण आसानी से सुनिश्चित किया जा सकता है, कि यदि ऋग्वेद की हर पांडुलिपि खत्म हो जाए तो भी हम उसे संपूर्ण भारत में श्रोत्रियों की स्मरण शक्ति से प्राप्त कर सकते हैं। यह देशी छात्र वेद को कंठस्थ कर लेते हैं और वे अपने गुरु से इसे सीखते हैं, किसी पांडुलिपि से नहीं।"[3]

भारतीय परंपरा में ज्ञान को मूल्यधर्मी माना गया है। ज्ञान का उद्देश्य मानवीय मूल्यों का उन्नयन है। मूल्य -चेतना के विकास से ही मानव चरित्र का निर्माण होता है। आधुनिक शब्दावली में भी शिक्षा का लक्ष्य मानव का विकास ही है।

भारतीय ज्ञान मीमांसा

भारतीय मत में ज्ञान को आत्म प्रकाश कहा गया है। यहां ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य के आत्म का विस्तार है जिससे वह 'स्व-बोध' के साथ 'पर- बोध' का अधिकारी बन सके। दूसरे शब्दों में, भारतीय परंपरा में ज्ञान का लक्ष्य मनुष्य का वैयक्तिक उन्नयन मात्र नहीं अपितु समस्त चराचर जगत का कल्याण है। भगवान बुद्ध अपने व्यक्तिगत निर्वाण के लिए नहीं, बल्कि पूरी मनुष्यता के कल्याण के लिए ही ज्ञान की तलाश में निकले और 'अप्प दीपो भव' अर्थात आत्मप्रकाश का संदेश दिया। जैनाचार्य भी 'जियो और जीने दो' की भावना के प्रकाशन को जीवन की चरम उपलब्धि मानते हैं।

भारतीय परंपरा में ज्ञान की अवधारणा न्यायाधारित रही है। यह सदैव नैतिकता पर अधिष्ठित रही है जो कि धर्म की मूल प्रतिज्ञा होती है। इसका संबंध मनुष्य के आचार, व्यवहार से है। प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री प्रो. अंबिकादत्त शर्मा कहते हैं "भारतीय ज्ञान परंपरा में मनुष्य के आचार और व्यवहार, मनुष्य के सामाजिक संबंध और कर्तव्य न तो उसकी निरंकुश इच्छा पर निर्भर हैं और न ही कार्यकारणात्मक प्रवृत्तियों से जनित हैं और न वे ऐतिहासिक संयोग से उत्पन्न हैं। आचार और व्यवहार के आदर्श प्रतिमान अंततः ऋत में ही गोपित हैं जो मनुष्य के हृदय में प्रकाशित और शिष्ट परंपरा से सुनिश्चित होते हैं। इसीलिए 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' अर्थात ऋत को धारण करने वाली, उसके साथ प्रचोदयात् संबंध में रहने वाली प्रज्ञा को मानव बुद्धि का आदर्श माना गया है।"

गौरतलब है कि यहां ज्ञान को धर्माधारित, नैतिक मूल्य चेतना से प्रेरित, सत्याभिमुखी और न्याय केंद्रित माना गया है। यहां मनुष्य को सृष्टि का 'स्वामी' नहीं, 'न्यासी' कहा गया है। ज्ञान का मूल प्रयोजन 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' माना गया है। इसके बरक्स, पश्चिमी परंपरा में ज्ञान शक्ति का केंद्र माना गया है। सत्ता, व्यवस्था और प्रकृति पर विजय प्राप्त करना जिसका एकमेव लक्ष्य रहा है। बाईबिल में लिखा है 'गाड हैज क्रिएटेड मैन इन इट्स मिनी इमेज टू रूल ओवर अर्थ....।'भारतीय ज्ञान परंपरा के गंभीर अन्वेषक प्रो. कपिल कपूर के शब्दों में - "knowledge in this tradition is not synonym for information, is not sensory in its source and is not an instrument either for promoting man's comfort or for enabling him to exercise power over nature and men. This "knowledge" is the knowledge of the indeclinable verities, of what it means to be a human being, a good human being, a knowledge that is rooted/sourced in deep meditation on the nature of human condition, a knowledge that seeks to promote "happiness" not comfort and a knowledge that enables man to free himself (from the narrow bounds of his own small self) rather than to limit the freedom of the other."[5]

कहना न होगा, भारतीय परंपरा में सत्य की प्रतिष्ठापना है। सत्य की प्राप्ति की जिज्ञासा अनवरत् विद्यमान रही है। यह भी कि, सत्य की प्राप्ति का कोई एक मार्ग नहीं माना गया है। उसकी प्राप्ति के लिए गुरुओं /आचार्यों/ प्रवर्तकों ने अनेकानेक मार्गों का निर्देश किया है। यहां गुरु को ज्ञान का मुख्य माध्यम माना गया है। ज्ञान के प्रत्येक अनुशासन में उसके प्रवर्तक/ चिंतक/ गुरु के आधार पर ही भिन्न-भिन्न शाखाएं और संप्रदाय बने हैं। भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन के उदाहरण से इसे इस तरह देखा जा सकता है-

| **संप्रदाय** | **प्रवर्तक/विचारक** | **ग्रंथ** |
|---|---|---|

| | | |
|---|---|---|
| *रस संप्रदाय* | *भरत मुनि* | *नाट्यशास्त्र* |
| *अलंकार संप्रदाय* | *भामह, दंडी, उद्भट* | *काव्यालंकार काव्यादर्श, काव्यालंकारसंग्रह* |
| *रीति संप्रदाय* | *रुद्रट, वामन* | *काव्यालंकार , काव्यालंकारसूत्र* |
| *ध्वनि संप्रदाय* | *आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त* | *ध्वन्यालोक, अभिनवभारती, महिम भट्ट व्यक्तिविवेक* |
| *वक्रोक्ति संप्रदाय* | *कुंतक* | *वक्रोक्तिजीवितम्* |
| *औचित्य संप्रदाय* | *आचार्य क्षेमेन्द्र* | *औचित्यविकारकारक।* |

भारतीय सभ्यता और संस्कृति दुनिया की उन प्राचीनतम, समृद्धतम और अद्यतन सभ्यताओं और संस्कृतियों में परिगणित की जाती है जिसकी अपनी अक्षुण्ण ज्ञान परम्परा वैदिक काल से ही रही है। इसके साक्ष्य हैं भारतीय भाषाओं में अंकित अनेकानेक ज्ञान ग्रंथ। वांग्मय के लिखित और मौखिक दोनों स्वरूपों में भारतीय ज्ञान- विज्ञान की समृद्ध परम्परा मिलती है। इस परम्परा का वैशिष्ट्य यह है कि दुनिया की तमाम ज्ञान

परम्पराओं की भांति इसका कोई एक निश्चित उद्भव काल नहीं रहा है। यह परम्परा इसीलिए सनातन कही गई है, क्योंकि यह अनादिकाल से नित्य -नूतन और चिर परिवर्तनीय रही है। यहां तक कि इसका कोई एक सृष्टिकर्ता भी नहीं माना जाता। इसके प्रवर्तकों को कर्ता नहीं द्रष्टा कहा गया है -ऋषियो मंत्र द्रष्टार:। यह भी कि, भारतीय ज्ञान परंपरा ईश्वरीय या किसी अलौकिक शक्ति का आदेश नहीं बल्कि ऋषियों, तपस्वियों के जीवनानुभवों से उपजी ऐसी ज्ञान राशि है जो वास्तव में जीवन और जगत् के प्रति मानवीय सरोकारों की अभिव्यंजना है।
उल्लेख्य है कि भारतवर्ष को यह गौरव अपनी ज्ञान संपदा के बल पर ही प्राप्त हुआ था। भारत भूमि ज्ञान- विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी, इसीलिए दुनिया में इसे विश्व गुरु का दर्जा प्राप्त था। १६वीं-१७वीं सदी तक दुनिया की इस समृद्धतम संस्कृति से समूचा विश्व चमत्कृत था। यहां के ज्ञान-विज्ञान और धन-वैभव ( जो कि ज्ञान-विज्ञान के ही सुफल थे) का विश्व के अनेक चिंतकों, इतिहासकारों, खोजकर्ताओं, विश्वयात्रियों ने वर्णन किया है।

कहा गया कि भारतीय ज्ञान परम्परा कोरी आस्थाओं की संहिता न होकर जीवन और जगत् के प्रति एक सुचिंतित अंतर्दृष्टि है जिसके आलोक में समस्त चराचर जगत के कल्याण की कामना की गई है। यही भारतीय ज्ञान परम्परा का वैशिष्ट्य है जो पश्चिमी मानव -केंद्रित ज्ञान परम्पराओं से उसे भिन्न और सार्वदेशिक -सार्वकालिक बनाती है।हमारे आद्य ग्रंथ चिर पुरातन, चिर नवीन इसीलिए हैं कि उनमें वर्तमान समय- संदर्भ को भी देखा जा सकता है। यह पुरोगामी ज्ञान परम्परा है जो उत्तरोत्तर विकसित, यथा आवश्यक परिवर्तित और समृद्ध होती गई है। इसमें जिस मूल्य- चेतना और तत्व -चिंतन की मीमांसा की गई है, वह सनातन है।

भारतीय ज्ञान परंपरा के वांग्मयीन अधिष्ठान

भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रामाणिक आधार वैदिक काल से प्राप्त होता है। (उल्लेखनीय है कि दुनिया के इतिहास में यह सबसे प्राचीन काल सिद्ध हुआ है) मंत्रद्रष्टा ऋषियों, तपस्वियों से प्रारंभ होकर यह परम्परा निरंतर प्रवहमान है। इसका साक्ष्य है वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक का लिपिबद्ध साहित्य। यह परंपरा श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, दर्शन, नीति, महाकाव्य इत्यादि के रूप में अंकित है। वैदिक ग्रंथों में समग्र भारतीय तत्व चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। इन्हें दो श्लोकों में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

चतुर्वेदा: पुराणानि सर्वोपनिषदस्तथा।
रामायणं भारतं च गीता सद्दर्शनानि च।।
जैनागमास्त्रिपिटका गुरुग्रंथ: सतां गिर:।
एष ज्ञाननिधि: श्रेष्ठ: श्रद्धेयो हृदि-सर्वदा।।[6]

अर्थात चारों वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, सर्व दर्शन, जैन आगम, बौद्ध त्रिपिटक, गुरुग्रंथ साहब तथा सभी संतों की वाणी में निहित श्रेष्ठतम ज्ञान- निधि श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

श्रुति यानि श्रवण आधारित ज्ञान को ही 'वेद' कहा जाता हैं। 'वेद' का अर्थ ही है ज्ञान। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना। ज्ञान की अभिलाषा ही वैदिक सूक्तियों में व्यंजित हुई है। इसीलिए स्वामी विवेकानंद वेद को कोई पुस्तक नहीं, जगत् सत्य का संचित कोष कहते थे। भारतीय समाज- जीवन में वेदों का अप्रतिम महत्व रहा है। प्राचीन काल से समाज द्वारा उन्हें धर्म, दर्शन, संस्कृति की गंगोत्री माना गया है। वैदिक मंत्रों में पद्य, गद्य व गेय तीनों रूप प्राप्त होते हैं। इसीलिए इसे 'वेदत्रयी' शब्द से भी अभिहित किया गया है। वेद को ऐसा ग्रंथ माना जाता है जिसका प्रवर्तक कोई एक व्यक्ति नहीं है, यह अनेक ऋषियों, मुनियों द्वारा शोधित/अन्वेषित ज्ञान- सत्य का संचित कोष है। व्यक्ति

विशेष द्वारा रचित न होने के कारण ही वेदों को अपौरुषेय माना गया है। और, ऋषियों के बारे में यह कहा गया है कि वह मंत्र कर्ता नहीं, मंत्र द्रष्टा थे- ऋषियो मंत्र द्रष्टार:। भिन्न-भिन्न समय में ऋषियों को जो सत्य आभासित हुआ, उसी की व्यंजना है वेद। ऐसी मान्यता है कि विविध ऋषि वंशों में जो श्रुति परम्परा चली आ रही थी, महर्षि वेदव्यास ने लोकहित के लिए उसे चार भागों में विभाजित किया - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

यह भी उल्लेखनीय है कि वेदों के मंत्रद्रष्टा पुरुष और स्त्री दोनों थे। ऐसे तपस्वी साधक- साधिकाएं जिन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि से सत्य का निर्वचन किया, उनमें प्रमुख रूप से वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, अंगिरा, भृगु, भारद्वाज, नारद, मनु, दीर्घतमस, शुन:शेप,कण्व, गौतम, कुक्षीवान के साथ श्रद्धा, रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, घोषा, यमी, इंद्राणी, उर्वशी, दिक्षिणा, सूर्या आदि का नाम अग्रगण्य है।

वेद सृष्टि-रचना और समाज के विकास तथा हमारे विविध प्रकार के ज्ञान - विज्ञान की जानकारी के अक्षय स्रोत हैं। वैदिक सूक्तों में जहां एक ओर सृष्टि की नियामक शक्तियों के प्रतीक देवताओं की अभ्यर्थना की गई है, वहीं दूसरी ओर दैन्य- दास से मुक्त एक ओजस्वी, तेजस्वी, चैतन्ययुक्त, यश की, जय की कामना करने वाले समाज का चित्र भी दिखाई देता है। अथर्ववेद का भूमिसूक्त भारत -भूमि की भक्ति का आदि गान ही नहीं है, इसमें व्यक्ति, विवाह संस्था, सभा -समिति और राष्ट्र के विकास की गाथा भी अभिव्यंजित हुई है। विज्ञान के अनेक तथ्य वैदिक ऋचाओं में संग्रहित हैं। दीर्घतमस ऋषि का अस्यवामीय सूक्त सूर्य की उत्पत्ति तथा विभिन्न ग्रहों की उससे दूरी व अन्य तथ्यों की गाथा है, जो वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत करता है। यही नहीं, संपूर्ण व्याकरण, शास्त्र व वाक् शास्त्र के विकास का मूल ऋग्वेद की यह ऋचा ही है -

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेङंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।[7]

अर्थात वाणी के चार पद होते हैं जिन्हें मनीषी जानते हैं। वे हैं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी। इनमें तीन गुप्त रहते हैं तथा चौथा तुरीय वाचा मनुष्य बोलता है।

वेदों के अनेक सूक्तों में संग्रहित तत्वज्ञान काल और समय से परे, हर युग के लिए दिशा -दर्शक रहा है। इन सूक्तों में नासदीय सूक्त का विशेष महत्व है। सृष्टि के पूर्व से लेकर आगे आने वाले जितने भी दर्शन विकसित हुए उनके बीज का अधिष्ठान इस सूक्त में माना जाता है। स्वामी विवेकानंद को यह सूक्त बहुत प्रिय था। इस सूक्त को देश में अनेक लोगों ने दूरदर्शन पर देखा और सुना होगा। श्याम बेनेगल रचित 'भारत एक खोज' सीरियल के शुरू में कुछ वेद मंत्र बोले जाते थे, यह नासदीय सूक्त के ही मंत्र थे। नासदीय सूक्त की शुरुआत ही ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पूर्व की स्थिति पर विचार करते हुए, स्थान और काल की अवधारणा को विवेचित करने के क्रम में हुई है। स्वामी विवेकानंद ने इसका सुंदर काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है-

ना सदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीव: कुह कस्य शर्मन्नम्भ: किमासीद्गहनं गंभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अहम् आसीत् प्रकेत:।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यत्र पर: किं चनास।।
तम आसीत तमसा गूढहमग्रेडप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।[8]

तब न सत् था न असत् ही
न यह संसार था न यह आकाश
इस धुन्ध का आवरण क्या था? वह भी किसका?
गहन अंधकार की गहराइयों में क्या था?।।

तब न मरण था न अमरत्व ही
रात्रि दिवा से पृथक नहीं थी
किंतु गतिशून्य वह स्पंदित हुआ था
तब केवल वह था जिसके परे
कोई अन्य अस्तित्व नहीं
वही चराचर था ।।
तब तम में छिपकर तम बैठा था
जैसे जल में जल समाहित हो पहचाना न जाय।
तब शून्य में जो था वह तप की गरिमा से मंडित था।।

विख्यात आधुनिक ब्रह्मांड वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंस ने अपनी पुस्तक 'दी ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में ब्रह्मांड की उत्पत्ति के पूर्व जिस अदृश्य बिंदु की कल्पना की है, जिसे 'ब्लैक होल' का नाम दिया है, उसे वैदिक ऋचा स्पष्ट करती है। सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? यह आदिम प्रश्न आज तक विज्ञान के लिए अबूझ बना हुआ है। स्टीफन हॉकिंस ने एक अंधकारमय पिंड की स्थिति की संकल्पना जरूर दी, लेकिन उससे किस प्रकार सृष्टि की सर्जना हुई, इसका बहुत तात्विक आधार उनके यहां नहीं मिलता। जबकि वैदिक ऋचाओं में इसे सिद्ध किया गया है। वहां स्पष्ट कहा गया है कि सभी शक्तियों के मूल में एक चेतना शक्ति है, वही निर्मात्री शक्ति है। समूचा वैदिक चिंतन सृष्टि के विकास के विधान से जुड़े अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर की प्रक्रिया में ही विकसित हुआ है।

कहना चाहूंगा कि वेदों में सत्य और स्वत्व की प्रतिष्ठा है। इसमें संपूर्ण विश्व को एक इकाई मानते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की कामना की गई है। अथर्ववेद में लिखा है - 'माता भूमि: पुत्रोहं पृथिव्या '। यहां सामाजिक जीवन की समता और समरसता की अपेक्षा व्यक्त की गई है -

सं गच्छध्वं सं बंदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागम् तथा पूर्वे, संजानाना उपासते।।[9]
अर्थात हम सब एक साथ चलें, एक साथ बोलें, हमारे मन एक हों। प्राचीन काल में देवताओं का ऐसा आचरण रहा, इसी कारण वे वंदनीय हैं। सामाजिकों में विचार वैभिन्य स्वाभाविक है, किन्तु भिन्नता के बावजूद सहिष्णुता जीवन और जगत् के कल्याण के लिए अत्यावश्यक होती है। ऋग्वेद में वैचारिक सहिष्णुता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति।[10] अर्थात सत्य एक है, विद्वान लोग उसे अनेक प्रकार से बखानते हैं। दुनिया के सभी दर्शनों का तत्वबोध इसमें समाहित है। वेदों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए मैक्समूलर लिखते हैं- " वेद आदिम कहे जा सकते हैं क्योंकि उससे ज्यादा आदिम कहा जाने वाला कोई अन्य साहित्यिक दस्तावेज नहीं है, किंतु हमें वेदों से जो भाषा, मिथक, धर्म और दर्शन मिलते हैं वे अतीत का वातायन खोलते हैं, उसे वर्षों में मापने का साहस कोई नहीं कर सकता। वे किसी अन्य साहित्यिक दस्तावेज से ज्यादा पुराने हैं और हमें मानव चिंतन के इतिहास के उस काल की भरोसेमंद जानकारी देते हैं जिनके बारे में हम वेदों की खोज के पहले कुछ नहीं जानते थे।"[11]

वैदिक मंत्रों को संहिता, ब्राह्मण,आरण्यक और उपनिषदों के रूप में जाना जाता है। वैदिक संहिताओं में ऋषियों की वाणी प्रकट हुई है जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती गई है। उन संहिताओं में व्यक्त विचार और चिंतन की एक समृद्ध परंपरा है।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक मंत्रों की विवेचना मिलती है जिसमें जीव -जगत के अनेक तत्वों का साक्षात्कार उपलब्ध हुआ है। वेद मंत्र पद्य में हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में। यहां यज्ञादि कर्मकाडों के साथ सामाजिक जीवन की प्राचीनता के संदर्भ में अनेक प्रश्नों पर विचार किया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में 'शतपथ ब्राह्मण' का सर्वाधिक महत्व है। ऐसा माना जाता

है कि पुराणों में वर्णित अनेक आख्यानों का आधार शतपथ ब्राह्मण ही है। आरण्यक ग्रंथों में आध्यात्मिक -दार्शनिक तत्ववाद का निरूपण हुआ है। इनमें जीवन के अनेक रहस्यों का वर्णन मिलता है। साथ ही, जीवन की सिद्धि का विवेचन भी।

उपनिषद् का अर्थ है ऐसी विद्या जो संसार बीज का नाश कर ब्रह्म के पास ले जाती है और जन्म के कारण कर्म बंधनों को शिथिल करती है। उपनिषदों में मानव मन में उठने वाले प्रश्नों पर तात्विक चिंतन किया गया है। उपनिषदों की संख्या 108 से लेकर 220 तक मानी जाती है किंतु 11 उपनिषद् जिन पर आदि शंकराचार्य ने भाष्य लिखा, वह महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ये हैं ईशावाश्योपनिषद्, केनोपनिषद, कठोपनिषद्, मुंडकोपनिषद, मांडुक्योपनिषद, ऐतरेय उपनिषद् , तैत्तिरीयोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, छांदोग्य उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद् एवं श्वेताश्वतर उपनिषद्। कठोपनिषद् के उपोद्घात में शंकराचार्य ने लिखा है - "जिससे मुमुक्षुओं की संसार - बीजभूत अविद्या नष्ट होती है, जो विद्या उन्हें ब्रह्म प्राप्ति करा देती है और जिससे दु:खों का सर्वथा शिथिलीकरण हो जाता है, वही अध्यात्मविद्या उपनिषद् है।"[12] उपनिषदों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा है- "उपनिषदों की भाषा और भाव की गति सरल है। उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का संदेश देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है। समस्त जीवन में मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है, उपनिषद् कहते हैं, हे मानव ! तेजस्वी बनो, वीर्यवान बनो, दुर्बलता को त्यागो।"[13]

उपनिषदों का आधार वैज्ञानिक है। उन्हें वेदों का ज्ञानकांड कहा गया है। उनमें जीव, जगत् से जुड़े अनेकानेक प्रश्नों का तार्किक और यथायोग्य अनुकरणीय समाधान प्रस्तुत किया गया है। विज्ञान एकत्व की खोज का

नाम है तथा खोज की दिशा में जब एकत्व को पा लिया जाता है तो खोज का अंत हो जाता है। यह निष्कर्ष सभी विज्ञानों पर लागू होता है, चाहे वह जीव विज्ञान हो, भौतिक विज्ञान हो या रसायन विज्ञान अथवा अन्य विज्ञान। उपनिषदों में इस अंतिम एकत्व का प्रतिपादन किया गया है। इस एकत्व की खोज में चले मानव मन के प्रश्नों को उन्होंने सबसे पहले खड़ा किया। तैत्तिरीयोपनिषद् में पंचकोशों का वर्णन हुआ है, जो जीवन की सम्पूर्णता का द्योतक है। यहां स्थूल से सूक्ष्म की जीवन यात्रा मानव जीवन की सार्थकता को रेखांकित करती है। अन्नमयकोश- प्राणमयकोश- मनोमय कोश- विज्ञान मय कोश- आनंदमय कोश की अंतर्यात्रा जीवन की उर्ध्वमुखी यात्रा का प्रतिपादन है।

शास्त्रों को वेदांग भी कहा गया है। इनकी संख्या छह मानी गई है। यह वास्तव में ज्ञान के विशिष्ट आयाम हैं, इन्हें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद, व्याकरण और ज्योतिष के नाम से जाना जाता है। उल्लेख्य है कि चार वेदांत शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त और छंद वस्तुतः भाषा विषयक हैं, शेष दो कल्प और ज्योतिष  का संबंध धर्म विज्ञान और खगोल विज्ञान से है। महर्षि पाणिनि ने वेदांगों को इस प्रकार समझाया है-

छन्दः पादौ वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतं
तस्मात्साङंगमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते।।[14]

अर्थात छन्द वेद के पाद हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष आंखें हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नासिका है और व्याकरण मुख है। इन अंगों के साथ वेदों का अध्ययन करने से ब्रह्मलोक में महत्व की प्राप्ति होती है।

वेदांग वस्तुतः वेदों को समझने के मार्ग हैं। यथा, निरुक्क्त वेदों के कठिन शब्दों के अर्थ को समझने का कोश है, तो व्याकरण वेदों का मुख है और

ज्योतिष वेदों की आंख। ज्योतिष में खगोल विज्ञान और काल विज्ञान का जितना सुचिंतित और तार्किक वर्णन है वैसा अद्यतन विज्ञान के पास भी नहीं है। किन्तु ज्योतिष को लेकर बहुत भ्रम पैदा किया गया है।ज्योतिष को कर्मकांडियों ने इच्छित फल की कल्पना का ग्रंथ बना दिया है। जबकि प्राचीन काल से ही ज्योतिष के अंतर्गत खगोल विज्ञान, काल विज्ञान एवं गणित की गणना होती थी। भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट आदि वेदांग ज्योतिष के अध्यता थे। खगोल और काल गणना में भारतीय ज्ञान परम्परा का आज भी कोई मुकाबला नहीं है। बीजगणित, रेखा गणित, त्रिकोणमिति आदि के 'कैलकुलेशन' वैदिक गणित में जिस प्रकार बताए गए हैं, वह आज भी उपयोगी है। आर्यभट्ट द्वारा भिन्न-भिन्न ग्रहों की सूर्य से दी गई दूरी आज के वैज्ञानिक निष्कर्ष के समान ही है। अंतरिक्ष विज्ञान संबंधी अनेक सिद्धांत भारतीय ज्ञान परम्परा की वैज्ञानिकता के प्रमाण हैं। इसी तरह कल्प सूत्रों में जिन लोक संस्कारों का वर्णन किया गया है उनका सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्य - चेतना के विकास में अक्षुण्ण स्थान है। आज मूल्य -चेतना के ह्रास का कारण व्यक्ति का संस्कारच्युत होते जाना ही है, जिससे जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएं खड़ी हो रही हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा मूल्य - चेतना के संवर्धन के द्वारा सामाजिक - सांस्कृतिक समस्याओं के निराकरण का एक प्रभावी माध्यम है।

भारतीय परंपरा में वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों में वर्णित तत्वज्ञान जन - सामान्य तक सरल रूप में पहुंचे, इसके लिए पुराणों की रचना हुई। इन्हें भारतीय संस्कृति के विकास को समझने का मार्ग कहा गया है। इस तरह से पुराणों को वेदों को समझने का सरलतम मार्ग कह सकते हैं। पुराणों के संबंध में अभारतीय विचारकों ने अनेक भ्रांतियों का निर्माण किया। इन्हें काल्पनिक, मिथकीय कहकर प्रचारित किया गया। जबकि भारतीय आर्ष ग्रन्थों में पुराणों का अन्यतम महत्व है। देवी भागवत में इसका महत्व बताते हुए कहा गया है -'श्रुति स्मृति उभे नेत्रे, पुराणं हृदयं स्मृतम्' । अर्थात

श्रुति और स्मृति दोनों नेत्र हैं और पुराण हृदय। पुराणों का रचयिता वेदव्यास को माना जाता है। इनकी संख्या 18 मानी गई है। सृष्टि की विकास- यात्रा को पुराणों में कथाओं, आख्यानों, जीवन- चरित्रों एवं संवादों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। भारतीय परम्परा में यह मान्यता है कि संपूर्ण जगत एक तत्व की अभिव्यक्ति है, उसके ही विभिन्न स्वरूपों के आधार पर 18 पुराणों की रचना हुई है।

पुराणों को इतिहास सिद्ध और वैज्ञानिक सत्य मानने से आधुनिक चिंतक बिदकते रहे हैं, उसके बारे में पाश्चात्य विचारकों ने जो घटाटोप निर्मित किया ,उससे आज तक भारतीय जन-मन उबर नहीं सका है। जबकि यह निर्विवाद सत्य है कि पुराण भारतीय इतिहास और विकास के आख्यान हैं। इनमें व्यक्त सत्य कल्पित नहीं है। इस संबंध में मात्र दो दृष्टांत पर्याप्त होने चाहिए -

पहला यह कि, सन् 1850 तक अफ्रीका महाद्वीप यूरोपवासियों के लिए दुर्बोध्य था। वह यह मानने को तैयार नहीं थे कि अफ्रीकी महाद्वीप में भी मनुष्य रहते हैं। आगे चलकर नील नदी की खोज करने की दिशा में जब कार्य बढ़ा और ब्रिटिश खोजकर्ता जाॅन स्पीकी ने 1863 में नील नदी की खोज की, उसने अपनी खोज का वृतांत एक पुस्तक में लिखा जिसका नाम था -'जर्नल ऑफ़ द डिस्कवरी ऑफ द सोर्स ऑफ द नाइल।' तब दुनिया ने अफ्रीकी महाद्वीप के मानव अस्तित्व को मान्यता दी। जाॅन स्पीकी ने यह कहा है कि इस खोज में उसे भारतीय परम्परा के पुराणों से बहुत मदद मिली। उसके शब्द हैं- "कर्नल रिग्बी ने मुझे एक मूल्यवान निबंध मानचित्र के साथ दिया जो नील नदी तथा चांद के पहाड़ से संबंधित था। वह निबंध कर्नल विलफोर्ड का लिखा हुआ था, जो उसने हिंदुओं के पुराणों के आधार पर तैयार किया था। यह आश्चर्य की बात है कि हिंदुओं को नील नदी के उद्गम का ज्ञान था। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन हिंदुओं का अफ्रीका के विभिन्न भागों से संबंध था।' आगे लिखता है "नील

नदी संबंधी हमारे सारे ज्ञान का केंद्र हिन्दू हैं..... बाकी मिस्र के भूगोल वेत्ताओं की बातें पाखंड और अनुमान हैं।"[15]इन विदेशी वैज्ञानिकों, खोजकर्ताओं के कथनों के साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में पुराणों का अनंत महत्व रहा है।

यही नहीं, भारतीय परम्परा में तर्क-वितर्क, शास्त्रार्थ-संवाद की भी सुदीर्घ परंपरा रही है। ऐसा माना जाता है कि वैदिक काल से ही ज्ञान परम्परा में उठे-उठाए गए विभिन्न प्रश्नों-उत्तरों के तर्क-वितर्क की ही प्रक्रिया विभिन्न दर्शनों के प्रणयन का कारण है। भारतीय ज्ञान परंपरा में दर्शन का विशेष महत्व रहा है। जीवन और जगत को बौद्धिक ही नहीं, व्यावहारिक धरातल पर भी देखने का ज्ञान इन दर्शनों का मूलाधार रहा है। जीवन को जानने की अदम्य इच्छाशक्ति से ही आगे चलकर विभिन्न साधना पद्धतियां विकसित हुई। प्राचीन काल से ही दो परम्पराएं रही हैं, एक ब्राह्मण परम्परा और दूसरी श्रमण परम्परा । ब्राह्मण परम्परा वैदिक थी और श्रमण परम्परा अवैदिक। अवैदिक के अंतर्गत चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन आते हैं, जबकि वैदिक परम्परा के अंतर्गत षड्दर्शनों का उल्लेख किया जाता है। ये छह दर्शन हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत। इसी परंपरा से भारत में अनेकानेक सम्प्रदायों का निर्माण हुआ।

नीति ग्रंथों में शुक्र नीति, विदुर नीति और कामंदक नीति का भारतीय ज्ञान परम्परा में बड़ा सम्मानजनक स्थान है। इन ग्रंथों में लोक जीवन संबंधी नीतियों का वर्णन मिलता है। ये ऋषियों की जीवन-साधना से निष्पन्न विचार हैं, जिनकी समाज के नियमन में महत्वपूर्ण भूमिका है।

महाकाव्य परम्परा में रामायण और श्रीमद्भागवत गीता सबसे महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ये महाकाव्य अपने उदात्त कथानक के नाते संपूर्ण सृष्टि के

लिए कल्याणकारी माने गए हैं। इनमें भारतीय जीवन -दृष्टि का आदर्श चरितार्थ हुआ है। इनमें एक तरह से भारतीय ज्ञान परम्परा का निचोड़ निरूपित किया गया है। कहना न होगा, महाकाव्य मात्र धर्म के अधिष्ठान नहीं हैं बल्कि जीवन-निर्वाह की पद्धति के मार्ग हैं। भारतीय महाकाव्यों में लोकमंगल विधान का भाव केंद्रीय है। रामायण  भगवान राम के चरित का ऐसा काव्य ग्रंथ है जिसमें मानव जीवन का आदर्श अंकित हुआ है।

महाभारत और गीता को संपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा का विश्वकोष और उपाख्यानों का कल्पवृक्ष कहा गया है। महाभारतकार ने इसकी व्याप्ति का संकेत करते हुए कहा है - 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।' अर्थात जो इसमें है वही सब जगह है और जो इसमें नहीं है वह कहीं नहीं है। इसे मानव मन की समस्त प्रवृत्तियों का कथात्मक आख्यान कहा जाता है। इसमें मनुष्य की प्रायः समस्त दशाओं और चराचर जगत् की समस्त स्थितियों का अंकन हुआ है। इसीलिए इसे 'ग्रेटेस्ट वर्क आन साइकोपैथोलॉजी' कहा गया है। आज के संदर्भ में भगवद्गीता के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. राधाकृष्णन् लिखते हैं "आज हमारे सम्मुख विद्यमान मुख्य समस्या मानव-जाति के मेल-मिलाप की समस्या है। इस प्रयोजन के लिए गीता विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि इसमें पृथक् - पृथक्, और प्रकटरूप में परस्पर विरोधी दीख पड़ने वाले रूपों का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है और धर्म की उन मूल धारणाओं पर जोर दिया गया है, जो न तो प्राचीन हैं और न आधुनिक , बल्कि शाश्वत हैं और अतीत, वर्तमान और भविष्यत् की मानवता के अंग-प्रत्यंग से संबंधित हैं।"[16]
गीता महाभारत का एक अंग है, जो भारत ही नहीं, दुनिया के तमाम महान विचारकों की श्रद्धा और जीवनचर्या का नियामक रहा है। आचार्य शंकर से लेकर लोकमान्य तिलक, श्री अरविंद, महात्मा गांधी, विनोबा

भावे आदि अनेक विद्वानों ने इसका अपने-अपने ढंग से निर्वचन किया है, भाष्य लिखा है।
महाभारत यदि जगत् में विद्यमान सभी प्रकार की मनोवृतियों का विश्लेषण करता है तो भगवतगीता सभी प्रकार के द्वंद्वों का, समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। मानो गीता में सारा तत्वज्ञान केंद्रीभूत हो गया है। इसीलिए इसे उपनिषदों का सार बताते हुए कहा गया है -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन:।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतंमहत्।।[17]

अर्थात सभी उपनिषद् गाएं हैं जिन्हें दुहने वाले गोपाल नंदन कृष्ण हैं। अर्जुन बछड़ा हैं जिसके माध्यम से सुधीजन गीतामृत का पान करते हैं। गीता में ज्ञान, भक्ति, तथा कर्म का ऐसा निरुपण हुआ है कि यह युगों - युगों के लिए मानवजाति की मार्गदर्शिका है। लोक ज्ञान का कोई भी आयाम उसके परे नहीं है।

ज्ञान की भारतीय परम्परा की आवश्यकता

ज्ञान की भारतीय परंपरा और वांग्मयीन अधिष्ठानों के महत्व के आलोक में यह रेखांकित करना चाहूंगा कि ज्ञान के भारतीय अमरकोशों की आधुनिक समाज के लिए आवश्यकता क्यों है? सबसे पहले इसके लिए हमें 'भारत हमें क्या सिखा सकता है?' के लेखक मैक्समूलर के विचारों पर दृष्टिपात करना चाहिए। भारतीय ज्ञान की आवश्यकता को अपरिहार्य मानते हुए वे लिखते हैं -"भारत के प्राचीन साहित्य को सिर्फ विस्मयजनक नहीं मानना चाहिए और प्राच्य विद्वानों के आनंद के लिए नहीं सौंपा जाना चाहिए, इसलिए कि यह प्राचीन साहित्य अपनी भाषा संस्कृत और अपने सबसे प्राचीन साहित्यिक दस्तावेज वेदों के द्वारा हमें ऐसे पाठ पढ़ा सकता है जो हमें कहीं कोई नहीं सिखा सकता। पाठ ये हैं कि हमारी अपनी भाषा का स्रोत क्या है, हमारी अपनी अवधारणाएं कब निर्मित हुईं और

जिस आर्य जाति की सभ्यता में संसार के महानतम राष्ट्र यानी हिंदू, ईरानी, ग्रीक और रोमन, स्लाव, सेल्ट और ट्यूटन आते हैं, उसके अंतर्गत समझी जाने वाली चीजों के सच्चे प्राकृतिक कीटाणु क्या हैं?"[18]

साथ ही, यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आधुनिक युग में विज्ञान की अंधी दौड़ और भौतिकता की चकाचौंध में उलझे मनुष्य का 'स्वत्व' खंडित होता गया है। हमारे समय का सच यह है कि तमाम भौतिक उपलब्धियों के बावजूद मनुष्य का वजूद संशयग्रस्त है। आधुनिक मानव की यह नियति बन गई है कि वह यंत्र बनने के लिए विवश है। परिणामस्वरूप, भौतिक प्रगति के बावजूद जीवन में निराशा, कुंठा, अवसाद, संशय, एकाकीपन, अजनबीपन घर करता जा रहा है। जीवन के प्रति बढ़ता असंतोष और आत्महंता वृत्ति इसी की देन है। इसकी वजह यह है कि वर्षों से शिक्षा के नाम पर ऐसा ज्ञान परोसा गया है जो मनुष्य को जागरूक, विवेकवान बनाने की बजाय अर्थ-पिपासु, वर्चस्ववादी और उपभोक्ता बनाने पर बल देता है। 'वस्तु' की कीमत पर 'आत्म' का बेहिसाब सौदा मानव को ऐसे मार्ग पर धकेल रहा है जहां अशांति, असंतोष और भौतिकता की असमाप्य दौड़ है।
निसंदेह ऐसे में ज्ञान की भारतीय परम्परा के पुनर्विलोकन की आवश्यकता है। भारत दुनिया की महाशक्ति बने, इससे अधिक आवश्यक है भारत दुनिया का दिशादर्शक बने। भारत अपनी ज्ञान परम्परा के कारण धन-वैभव ही नहीं, मानव-निर्माण की प्रयोगशाला रहा है। 21वीं सदी में जब मनुष्यता छीजती जा रही है, प्रतिरोध की सांसें टूटती जा रही हैं, यह आवश्यक है कि हम मानव निर्माण, संवैधानिक शब्दावली में नागरिक समाज के निर्माण के बारे में सोचें। बारूद की सुरंग पर, परमाणु की भट्टी में बैठी हुई मानव सभ्यता के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि मानव समाज ज्ञान के मूलार्थ और निहितार्थ को समझे।

जीवन की चरम उपलब्धि विलास नहीं, आनंद है । इस सत्य का निदर्शन भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उत्स है।

सारांशत: यह कहना चाहूंगा कि भारतीय ज्ञान परम्परा का एक व्यापक वांग्मयी संस्थान है, जिसमें जीवन और जगत् के बहुविध रूपों का वर्णन हुआ है। यहां सृष्टि के उद्भव से लेकर उसकी अनवरत् विकास-यात्रा तक के समस्त कारणों और कारकों का व्यवस्थित, सुचिंतित बोध प्राप्त होता है। शास्त्रीय वांग्मय के अवलोकन के आधार पर यह कहना चाहूंगा कि वेद से लेकर महाकाव्य तक समूचे वांग्मय में जीवन को श्रेयस्कर और सुखकर बनाने की साधना में जो ज्ञानराशि रोपित - पल्लवित हुई है, उसमें मुख्यतः चार तत्वों की प्रधानता है - सत्य(truth), सहिष्णुता(tolerance), आनंद (happiness)और समरसता(harmony)। समूची भारतीय ज्ञान परंपरा में चाहे कर्मकांड हो, अध्यात्म हो, आख्यान हो या देव-दनुज-मानव अथवा प्रकृति का आराधन हो , सर्वत्र एवं सदैव इन चार तत्वों की प्रतिष्ठा मिलती है। कारण यह कि ये चार तत्व महज विद्या - बुद्धि के घटक नहीं हैं, बल्कि सृष्टि के नियामक और सहचर के बीच अंतर्संबंधों के अधिष्ठान हैं। भारतीय मनीषा इन्हीं तत्वों के आधार पर लोकजीवन की स्तुति करती है। मानव ही नहीं, समूचे चराचर जगत के कल्याण के मूल में इन तत्वों की प्रतिष्ठा है।

संदर्भ :


1. श्रीमद्भागवत गीता, 4.38

2. Sri Aurobindo , India's Rebirth, Paris: Institut de Recherches Evolutives and Mysore:Mira Aditi,1ed.,1993

3. मैक्समूलर, भारत हमें क्या सिखा सकता है (अनु. सुरेश मिश्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 146-147

4. प्रो. अंबिकादत्त शर्मा, भारतीय ज्ञान परंपरा और उसकी विश्वदृष्टि - भारतीय ज्ञान परंपरा का वैशिष्ट्य (सं. मनोज पाण्डेय), एक. आर. पब्लिशिंग कं., दिल्ली, 2024, पृ. 69
5. Kapil Kapoor, Avdhesh Kumar Singh, Indian knowledge system, vol. I, Indian institute of advanced study, Shimla, 2005, p.29
6. सुरेश सोनी, हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, लोकगीत प्रकाशन लखनऊ, 2016, पृ.27 से उद्धृत
7. ऋग्वेद 1.164.45
8. ऋग्वेद -1.129
9. ऋग्वेद – 10.181.2
10. ऋग्वेद 1.164.46
11. मैक्समूलर, भारत हमें क्या सीखा सकता है (अनु. सुरेश मिश्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2019 , पृ. 91
12. आदि शंकराचार्य, कठोपनिषद्, उपोद्घात
13. सुरेश सोनी, हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, लोकगीत प्रकाशन लखनऊ, 2016, पृ.51-52 से उद्धृत
14. डॉ. रमाशंकर मिश्र, अष्टाध्यायीसूत्रपाठ:, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1997, प्रास्ताविक से उद्धृत
15. सुरेश सोनी, हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, लोकगीत प्रकाशन लखनऊ, 2016, पृ. 58
16. डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्, भगवद्गीता, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1982(आठवां संस्करण), भूमिका
17. वहीं, पृ16
18.मैक्समूलर, भारत हमें क्या सिखा सकता है (अनु. सुरेश मिश्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2019 , पृ 91

प्रस्तुतकर्ता

डॉ. मनोज पाण्डेय
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर -440033 (महाराष्ट्र)